गाली देगा, मारपीट जरूरी हुई तो मारपीट करेगा। और रोज-रोज इसी पैंट को पहनकर दफ्तर जाएगा।

विष्णु नागर

जन्म : जून, 195

पत्रकारिता, नईदुनिया से संबद्ध। एच.टी. मीडिया प्रकाशन की हिन्दी मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' के कार्यकारी सम्पादक रहे। इससे पहले 'हिन्दुस्तान' के विशेष संवाददाता रहे। 'नवभारत टाइम्स' में विशेष संवाददाता सहित विभिन्न पदों पर रहे। द वॉइस ऑफ जर्मनी, कोलोन (जर्मनी) में दो वर्ष तक हिन्दी सेवा के संपादक रहे।

दर-ब-दर

-शशांक

कोलाहल के बीच मैं चुप था। जी हाँ, मुझे बहुत जोरों से लगा कि अपने शहर में होता तो कम से कम सीटीनुमा आवाज तो जरूर निकालता। कुछ कसरत की कोशिश करता और स्टेशन के हर आने जाने वाले व्यक्ति को पहचानने के लिए मुड़-मुड़ कर देखता अपने शहर में तो हर आदमी पहचाना-पहचाना लगता है। मगर यहाँ इस खेल में किसे शामिल करता? तमतमाए चेहरों की हँसी खुशी, दौड़ लगाते हुए बच्चे और गहरे विषाद में लटके हुए सिरों को दूर से बैठकर देखना एक खेल ही नहीं था। उसमें थोड़ा सा डर भी मिला हुआ था। आज पहली बार लग रहा है, किसी सीमेंट की बैंच पर बैठा कोई लड़का मेरे डर को भाँप रहा होगा। शायद अब खेल नहीं होगा सिर्फ डर होगा। और मजबूरन इसी डर से वह खेल रहा होगा।

सूटकेस और होल्डाल घसीट कर एक किनारे पर कर दिया। दुबेजी ने आने को लिखा था तो आएँगे जरूर ही। हो सकता है खोजते हुए आ रहे हों। मंजन कर लेता तो अच्छा था। परंतु इस चक्कर में खो जाऊँगा। पटरियों के उस पार बंबे के नीचे कुछ लोग नहा रहे हैं। शरीर मल-मल कर नहा रहे हैं। और फटे चीकट कपड़ों को फटकार कर पहन रहे हैं। तीन टाँगों के सहारे उचकता हुआ कुत्ता औरत की रोटी सूंघ रहा है। उसकी एक टाँग गाड़ी से कटी होगी और औरत स्टेशन के बाहर कहीं पागल हो गई होगी।

वे दुबेजी चले आ रहे हैं। नीली जींस की पैंट और कोटी पहने हैं। लगभग दौड़ते हुए आते हैं। इतनी भीड़भाड़ में क्या कह रहे हैं, कुछ सुनाई नहीं देता। केवल मुस्कराहट पकड़ पाता हूँ। अरे मालिक! जै राम जी-मैंने दोनों हाथ उठा दिए।

हाय या हाई ऐसा कुछ दुबेजी ने कहा और अपने दोनों हाथ कूल्हे पर धर लिए।

मेरे हाथ मय कोहनियों के झूलते हुए नीचे आ गए। अच्छा चलो। जल्दी चलें। फिर मुझे ऑफिस जाना है। स्कूटर ले लेते हैं। दुबेजी ने एक साँस में कहा और कुली को आवाज देने लगे। उन्होंने मुझे चुपचाप देखकर ही शायद यकायक अपने हाथ मेरे कंधे पर रख दिए फिर मुझे देखा या कहिए कि जायजा लिया और पूछा कि न हो तो चाय पी ली जाए। मैं काफी देर तक चुप रहा। वास्तव में दुबेजी की फर्ती से मैं सुट्ट रह गया और काफी देर तक इस फुर्ती में दुबेजी की पुरानी आदतें ढूँढ रहा था।

देखो यदि इस तरह सुस्तराम रहे तो दिल्ली तुम्हें खा जाएगी समझे मुन्ना। चाय पियोगे न?

ऐसा करते हैं कि घर पर ही लेंगे।

घर कहाँ यार! कमरा कहो। यहां चाय तो मैं बनाता नहीं। खैर चलो वहीं कहीं पी लेंगे।

स्कूटर में बैठकर पहली बार दुबेजी ने घरेलू अंदाज में पूछा–और क्या हाल चाल हैं शहर के?

शहर माने माता पिता भाई बहिन

शहर माने प्रेमिका

शहर माने तालाब पेड़ पुल

शहर माने दोस्त

शहर माने सड़कें

मैं कैसे सारी बातें सूक्तियों में उन्हें बता सकता? कह दिया–शहर की तबियत दुरुस्त है। सूक्तियाँ कभी किसी का भला नहीं कर सकतीं। वे उनकी जिज्ञासाओं पर कील की तरह ठुक गई तो। दुबेजी फिर बतलाने लगे–यह कनॉट सर्कस है। यह पार्लियामेंट स्ट्रीट। यह अशोका होटल। कल से घूमेंगे, मुन्ना, आज तो तुम आराम करना।

मेरा ख्याल है, आज ही उनसे मैं मिल लेता?

वे जान गए कि मैं दिल्ली दर्शन के लिए नहीं आया हूँ। काम पर आया हूँ।

आज ही मिलोगे?

मिल लेते तो अच्छा था।

पहले अपन फोन कर लेंगे।

चला ही जाता तो?

फोन पर बात करते डर लगेगा क्या?

हाँ, डर को निस्संकोच होकर खोला।

तुम्हें किस बात का डर भाई। ठाठ से कहना तुम्हारे दामाद आए हैं।

गाड़ी भेजो फटाफट।

औल सैक्लेटली भेज देंगे तो फिल?

तो सेक्रेटरी को रख लेंगे और गाड़ी भेज देंगे। ठीक?

ठीक!

ठीक?

ठीक!!

दुबेजी की सहायता से मैं विभोर होता रहा। और अब तो मैं यह कहूँगा कि दुबेजी बड़े रायल आदमी हैं। स्टेशन पर उतरते ही मुझे लगा था कि सभी लोग किसी षड्यंत्र के तहत भागदौड़ कर रहे हैं। और इसमें से कोई न कोई अंत में मेरा टेंटुआ दबा देगा। पर अब चैन है। दुबेजी जाने बूझे हैं, कोई डर नहीं।

तुम प्रेम-पत्र ले आए हो ना?

अब जब तक प्रेम-पत्र है मैं मर नहीं सकता। वही तो आया है, उसके पीछे-पीछे मैं दुमछल्ला हूँ।

तुम्हारी अच्छी पहचान है। मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है।

अगर आप मेरी जगह होते तो आपकी फट जाती।

अब तो निश्चित ही है कि लग जाओगे।

हाँ, उम्मीद तो है।

तुम आई.ए.एस. में क्यों नहीं बैठते?

दुबेजी, पढ़ाई पूरी किए अभी एक साल हुआ है। फूला फूला फिरा जगत में, कुछ दिन तक। फर्स्ट डिवीजन आई है। क्या बात है। वा भई मैं, वा। पिताजी भी कहते रहे आई.ए.एस. में बैठो। यदि यहीं मेरा अंतिम उद्देश्य होता न दुबेजी तो मैं कम-से-कम अबतक सेल्सटैक्स इंस्पेक्टर तो हो ही गया होता। मैंने दो तीन इंटरव्यूज दिए। नहीं हुआ तब सबको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। पिताजी आई.ए.एस. से धीरे-धीरे उतरते हुए 225 की

बेसिक पर आ गए। बाइस साल का लड़का जब तेइसवें में निरा नालायक और मूर्ख साबित हो जाए तो घर में ऐश बंद हो ही जाने चाहिए। सो अंडा और दूध बंद हुआ।

खैर, अब तो नौकरी मिल ही जाएगी। इसके साथ ही कांपीटीशन की तैयारी करना।

दुबेजी बात ऐसी है। नहीं। क्या कारण है कि आप यह नहीं कहते कि मुन्ना नौकरी लग जाएगी तो हॉकी की और अच्छी प्रेक्टिस करना। मन लगा कर लिखना-पढ़ना। अच्छी जिंदगी जीना।

यार मुन्ना, एक बार बड़ी पोस्ट पा जाओगे न तो तुम्हारे बड़े-बड़े मार्क्सवादी मित्र तुम्हारी झंडी उठाएँगे। खैर अभी तुम बच्चे हो मेरे साथ रहोगे तो व्यावहारिक बना दूँगा।

दुबेजी ने स्कूटर एक ओर मुड़वाकर रुकवा दी। हम दोनों ने मिलकर सामान उतारा। दुबेजी ने ड्रायवर को पैसे देते हुए कहा-मुन्ना तुम्हें मैं कांपीटीशन में बैठाकर ही छोड़ूँगा।

इतनी जबरदस्त और गलत आत्मीयता के लिए मैंने, हूँ कहा और सामान ढोने का प्रयत्न किया। दुबेजी के साथ सामान ढोकर दूसरी मंजिल पर आए। बीच सीढ़ियों पर रुककर उन्होंने फुसफुसाकर कहा कि ड्डसधजी से कहना कि छोटा भाई हूँ। और वैसे भी मेरे भाई की तरह हो। मैंने इस कदर सिर हिलाया मानों चोरी करने जा रहे हों।

दरवाजा खुलने पर एक तगड़ी औरत को मैंने नमस्ते किया। दुबेजी कुछ बोले इससे पहले ही उन्होंने कहा-आपके भाई है? आओ जी आओ।

हम कृतज्ञ होते हुए अंदर आए। बहुत सारे बच्चे थे और कमरे में बू भरी हुई थी। दुबेजी ने अपने कमरे का ताला खोला। सामान ठेल कर अंदर किया। दुबेजी ने दरवाजा बंद कर लिया।

देखो अब तुम्हें यहाँ रहना है। इन्हें मूँ लगाने की जरूरत नहीं है। नहीं तो सारे बच्चे यहाँ आ जाएँगे। दिल्ली के लोग हरामी होते हैं। तुम्हें कब नंगा कर दे मालूम नहीं।

और आपको किसके लिए नियुक्त किया गया है? आप मुझे भर नंगा न करना-मैं हँसा।

उन्होंने गर्व के साथ सूचना दी कि वे कभी दिल्ली के नहीं रहे। उन्होंने कहा कि छह महीने में यहाँ की नस पकड़ी जा सकती है। और एक बार नस पकड़ ली तो फिर लाखों का वारा-न्यारा हो जाए। दुबेजी कुछ और गुप्त सफलता के सूत्रों की जानकारी

देते इसके पहले ही मुझे मुँह धोने की याद आ गई। मैंने जमीन पर होल्डाल बिछा लिया और बैठकर मंजन करने लगा। दो बिस्तरों और एक मेज से कमरा भरापूरा हो गया। एक वार्डरोब है जो दीवार में समाई हुई है। एक रस्सी एक कोने से दूसरे कोने तक तनी हुई है जिस पर कपड़े लटक रहे हैं। मेज के ऊपर दीवाल पर हाथ से बना ग्रीटिंग लगा हुआ है। 'दादा को शुभ-कामनाओं सहित-कुन्नू, राजू, बंटू और विमला।' एक पंक्ति और लिखी गई होगी। जिस पर नीली मोटी लकीर फेर दी गई है। सजावट के नाम पर यही एक चिप्पी है। लेकिन शायद यह सजावट न हो। मेज पर कुछ किताबें हैं। नीचे प्लास्टिक की बाल्टी। बाकी सामान वार्डरोब में होगा। उसमें भी मैं अपने कपड़े रख लूँगा।

निबट लेने के बाद हम नीचे उतर आए। दुबेजी ने कमरे पर ताला लगा दिया था। और ऑफिस जाने की तैयारी में पोर्टफोलियो ले लिया। मुझे कुछ अजीब सा लग रहा था। एक घर में रहकर अपने कमरे को जुदा रखना। नीचे आकर मैंने कहा तो वे बोले दोस्त, यह दिल्ली है। यहाँ चुरकट भावुक की तरह तुम रहे तो जरूर तुम्हारी नैय्या विजय चौक पर डूब जाएगी। अपना मतलब साधो बस। मैं उसे किराया देता हूँ कमरे के लिए। न की भाई-भौजाई बनाने के लिए।

पास में ही होटल थी। लोगों ने हँस-हँसकर उनसे नमस्ते की। तनिक आवाज को रठ्ठ बनाकर होटल के मालिक से मेरा परिचय कराया गया। अब यहीं नाश्ता करना है, यही भोजन करना है। दुबेजी ने स्नेह के चलते मालिक को एक बोल मारी और मुझसे कहा कि-मुन्ना यह वैष्णव भोजनालय है। इसलिए लहसुन और प्याज का बंदोबस्त नहीं है। वैष्णव होना फायदेमंद इसलिए है कि प्याज मँहगी है। पर बाहर जो तखत पर अंडे उबाल रहा है। यहाँ ले आएगा। दाल मुफ्त नहीं मिलेगी और सब्जी की तरी सिर्फ एक बार मिलेगी। सारी व्यवस्था समझाने के बाद मठरी और चाय का नाश्ता किया। मुझे घर की याद आने लगी। घर यानी माँ। मठरी यानी माँ।

छूट गया भाई छूट गया
घर आँगन तो छूट गया
छूट गया भाई छूट गया
घर
आँगन

छूट गया

पुराने दिन बहुत खराब होते हैं। कॉलेज के दिनों के जुलूस, बंद मुट्ठियाँ, नारे, सन-सनाहट, गुस्सा...पानी की तरह गदबदाता-मगर जुलूस रोक लेता हूँ। मक्कार आदमी की तरह हँसता हूँ क्योंकि दुबेजी एक नौकर से धौल-धप्प कर रहे हैं। दस या बारह के करीब का लड़का। मोटा हँसमुख।

मुन्ना अपने को ये खाता खिलाता है। विक्रम है। साला बदमाश है। पर काम अच्छा करता है।

मैंने उससे कहा-विक्रम अब मैं भी यहां खाया करूंगा।

ठीक है साब, अपनी तो यही नौकरी है। उसने अदाकारी में सिर झुकाया और पूछा, समोसे चलेंगे?

दुबेजी ने घड़ी देखी। कहा, नहीं चाहिए। फिर मेरी तरफ होकर बोले, चलो उठो मुझे जाना है। उन्होंने मुझे चाबी दे दी। बोले शाम को जल्दी आ जाऊँगा। आज तो तुम कमरे पर आराम करो। कल तुम्हारे साथ चले चलूँगा। फ्रेंचलीव हो जाएगी। वे पोर्टफोलियों झुलाते हुए बस स्टॉप की ओर चलने लगे। मैं भी पीछे-पीछे चलने लगा तो उन्होंने मना कर दिया-जाओ मुन्ना, जाके आराम करो। फिर रूककर बोले तुम्हें मालूम है मुन्ना, साले जो दो-दो हजार पाते हैं, वो भी धक्का खाते खड़े रहते हैं। आप मालूम नहीं कर सकते कि कमाते कितना है। अच्छा तुम जाओ।

मैं समझ नहीं पाया कि आखिरी बात के लिए वे रूक क्यों गए थे। आज्ञाकारी की तरह मैं कमरे पर लौट आया। दूसरे कमरे में बच्चे हल्ला कर रहे हैं। माँ खीज रही है। मैं दरवाजा बंद किए बैठा हूँ। ये कमरा। सिर्फ दुबेजी का कमरा। कितना अजीब है। छीना-झपटी और रोना गाना। होल्डाल से डब्बा निकाल कर गाजर की बर्फी निकाल लेता हूँ। दरवाजा खोलकर कमरे से बाहर आता हूँ। बच्चों ने तो सारा सामान अस्त-व्यस्त कर दिया है। वे पाँच हैं। वे सब चुप होकर मुझे देखने लगते हैं। मैं बर्फी उन्हें दे देता हूँ। वै हैरान होकर मुझे देखने लगते हैं। दिल्ली के बच्चे। दुबेजी, दिल्ली के बच्चे। उनकी माँ सिर से दुपट्टा सरका कर कर मुँह से लगा लेती है। शायद हँस रही है कहती है-ये ऐसे नहीं मानेंगे। अब तो और रोएँगे। गाजर की मिठाई खाई है कभी तुम लोगों ने, अब चुप होना।

चुप तो हैं-मैंने कहा।

अब हम बहुत कुछ कहते। मसलन

आप इन्हें स्कूल क्यों नहीं भेज देती?

अरेऽऽ कहाँऽऽ

कम से कम बड़े को?

अगले साल देखेंगे।

सिंघ साब जल्दी निकल जाते हैं।

एक जगह और थोड़ा काम करते हैं।

जमाना बड़ा मँहगा है।

हं जी।

तीन में से एक दुबेजी को दे दिया तो घर भी छोटा होगा?

हाँऽऽ

चलो ये तो है कुछ पैसे आ जाते हैं।

हं जी।

आप यहीं की हैं?

नहीं जी।

छुट्टियों में गाँव जाती होंगी?

अरेऽऽ कहाँऽऽ

मँहगाई बहुत है।

हाँऽऽ

पूरा नहीं पड़ता।

हाँ।

हाँ।

हाँ।

इसी तरह से कुछ बातचीत होती। इसके पहले ही मैं कमरे में आ गया।

आदमी जब अकेला होता है इस पर भी अकेला नहीं होता। अपने आपसे लड़ता रहता है। कुछ सुझाता है। हँसता है। और कभी-कभी लड़ते-लड़ते उक्ताहट होती है। संशय या हार के दौरान। कभी लड़ते-लड़ते आयतन कम हो जाता है। किस चीज का।

मुझे मालूम नहीं। परंतु कोई चीज सिकुड़ जाती है, यह तय है। इसको मैं कह देता हूँ कि कुछ लुप्प् हो गया। शायद आप कुछ और कहते हों। कुछ भी कहें क्या फर्क पड़ता है।

बहुत बार, शुरू में ऐसा हुआ कि इसी लड़ाई के कारण मैं अपने को दूसरी से अलग कर लेता था। शानदार लड़ाई जो मेरे अंदर चल रही है वह दूसरों में कहा! बाद में, अनेक लत भंजन के बाद यह महसूस हुआ कि अकेला वीर मैं ही नहीं। कोरस में कई वीर हैं। अब आप यह कहिए कि ये तो लड़ाई का वो हिस्सा है जो महत्वाकांक्षा के निकट आता है।

बहुत ठीक, बहुत ठीक। यह निहायत खुशी की बात है कि लड़ाई के उस हिस्से को हम, कम-अज-कम पहचान तो रहे जो अंदरूनी मामला है। किन्तु ये सिकुड़न है न वो तनाव (कैसा वाहियात शब्द है) पैदा कर देती है जो लड़ाई के दूसरे हिस्से की भी रंगाई करता है।

मैं उक्ता गया।

सारे कमरे की चीजें करीने से लगा दीं। और फिर बिस्तर पर लेट गया। तकिए में से लिफाफा निकाला। श्रीमती का पत्र है-

अपना बच्चा है। भला है। अपने यहाँ लगा सको तो इस पर दया होगी। सब ठीक है।

श्रम की कदर की जाती हो तो बाईस वर्ष थोड़े नहीं होते।

इसके बाद दया?

लुप्प्

लुप्प्

लुप्प् लुप्प्

लुप्प्

मुझे अचानक महसूस हुआ मैं दिल्ली में हूँ। मुझे लाल किला देखना चाहिए। मुझे कुतुब देखना चाहिए।

कैबरे

जू

प्रधानमंत्री

अशोका, ओबेराय

कनॉट प्लेस

नहीं। कुछ भी नहीं। मैं यहाँ सिर्फ नौकरी करने आया हूँ। मेरे शहर में भी बहुत सी चीजें है। जिन्हें देखकर मैं खुश होता था। छोटी-छोटी टेकरियाँ, गत्ता मिल का धुआँ।

पिछले साल से फिर कहीं नहीं निकला कभी कभार कोई मिल जाता तो कहता-कहो कुछ जमा?

नहीं

दूसरा, कहीं कुछ जमा?

यार, पी.एचडी. कर रहा हूँ।

तीसरा, कहीं कुछ जमा?

यार, सोचता हूँ फॉरेन निकल जाऊँ।

चौथा मिले इससे पहले मैं घर में कैद रहने लगा। निर्वासन। घर का निर्वासन। दिल्ली का निर्वासन। समय का जिंदगी से निर्वासन। मैं तैयार होता हूँ। हजामत बनाकर धुले कपड़े पहनता हूँ। श्रीमती का पत्र जेब में रख लेता हूँ पत्र को निकाल कर चोर जेब में रख लेता हूँ।

लुप्प् लुप्प्

बस नं. 15

अब

अब नं. 11

आप सीधे चले जाइए। फिर दाएँ फिर दाएँ। लाल भवन। लिफ्ट पकड़िए और ऊपर छठी मंजिल।

मैं आ गया हूँ।

कार्यालय में घुसता चला जाता हूँ। सिर झुकाए लोग कागजों से जूझ रहे हैं। मैं किसी से पूछता हूँ ता पूछने के पहले ही सिर हिला देता है। फिर कोई उँगली की नोक पर बैठाकर एक चैंबर में लुढ़का देता है। हम उम्र चुस्त नौजवान से पूछा रहा हूँ। चोर

जेब में मेरा हाथ थरथरा रहा है। वह कहता है मैनेजर साब अभी नहीं है। पाँच दिन बाद आएँगे। फिर आइएगा।

पाँच दिन और? पहले चिंता फिर खुशी। परीक्षा भवन से बाहर निकल जाने जैसी खुशी। रास्ते में पूछते-पूछते बस से लौट आया। भोजन करके कमरे पर आ गया। शाम तो हो रही है। अब दुबेजी को आ जाना चाहिए। वोट क्ल पर बहुत बड़ा लाल सूरज पत्थरों के भवन के पीछे था। पानी पर भवन, रंग और पूरी भव्यता हिलोर ले रही थी। मैंने तय किया कि नौकरी लगने पर सब कुछ देखूँगा। सब कुछ। नौकरी होने पर सब कुछ आसान हो जाता है क्या?

चार पाँच दिन।

शामें ही ऐसी है, जबकि लगता है कि दिल्ली में हूँ। नए शहर में हूँ। वरना सुबह होटल, लेटना दोपहर फिर शाम। कुछ किताबें साथ लाया था। परंतु वे वैसी की वैसी धरी रही। क्या पढ़ूँ कुछ समझ नहीं आता। जो भी कुछ पढ़ लो किंतु यह निश्चित है कि काम नहीं आएगा। वे सब मूर्धन्य सारी पढ़ाई पर पानी फेर देंगे। फ्रायड की औरतें, पावलोव के कुत्ते, कोह के बंदर, बड़बड़ाहट में हँसता गाँधी। सब बेमानी हो गए हैं। अब जो है वह श्रीमंत का पत्र और एक नई दुनिया। या शायद दुनिया जिसमें पहली बार धँस रहा हूँ।

दुबेजी थके हारे शाम को लौटते हैं। पूछते हैं-कुछ पढ़ा?

मैं कहता हूँ, नहीं, और हँसता हूँ।

दिन भर पड़े-पड़े क्या करते हो?

सोता हूँ।

कहानियाँ ही पढ़ा करो।

श्रीमती का पत्र पाँच छे दफे पढ़ लेता हूँ।

दुबेजी कुछ नहीं कहते। नए कपड़े पहन कर तैयार होते हैं। योग जैसी दो चार चीजें निकालते हैं। फिर आइने में तरह-तरह से चेहरा देखते हैं। गाल फुलाकर। पिचकाकर। आँख के पपोटै खींचकर। दाँत निकालकर आईना देखते हुए मुझसे पूछते हैं-मुन्ना मेरी उम्र क्या लगती होगी?

मैं झूठ बोलता हूँ-3

नहीं यार! फिर से देखो। अपना चेहरा मेरे सामने कर देते हैं।

बिल्कुल 3।

वे उमग जाते हैं-कितना मेंटेन करके रखा है मैंने। अब तो खैर सेहत थोड़ी गिर गई नहीं तो कोई भी 17-28 से कम समझता।

हाँ। मैं कहूँगा ही।

यार धक्कम धक्के में मर गए। एक के बाद एक चार नौकरी। इधर से उधर। सैटिल ही नहीं हो पाए।

सैटिल यानी शादी?

शादी भी। क्यों हमारी इच्छा नहीं हो सकती क्या?

तो क्या? शादी कर लीजिए। भाभी को घर छोड़ आना।

मैं ही खुद 4 साल से घर नहीं गया।

4 साल!

हाँ।

आपको याद नहीं आती?

नहीं। कुछ रूपया जुड़े तब घर जाएँ।

इसके बिना नहीं?।

जाना कोई मतलब नहीं रखता। न मेरे लिए न उनके लिए।

ऐसा नहीं है।

तुम अभी बच्चे हो मुन्ना। धीरे-धीरे व्यावहारिक बनोगे।

आप अपनी उम्र का फायदा उठा लेते हैं। मैं एकदम बच्चा नहीं हूँ। सचमुच आपको याद नहीं आती?

धीरे-धीरे भूल जाता हूँ। अच्छा उठो चलो।

हर बार वही कनॉट प्लेस!

पिछली बार जब मैं पेरिस में था तब मेपिल की पत्तियाँ इसी तरह सड़क किनारे छा जाती थीं। मुझे पेरिस की बेहद याद आ रही है!

मुन्ना मुझे न्यूयार्क की!

अच्छा चलो कोई बात नहीं। हम मिलकर पेरिस चलेंगे।

नहीं न्यूयार्क।

एग्री।

बहुत चमकीली रोशनियाँ। बहुत अमीर हँसियाँ। बहुत कोमल सरसराहटें। दुबेजी दो साफ्टी खरीदते हैं।

वे कहते हैं–मुन्ना जब मैं बिल्कुल अकेला होता हूँ। तो एक साफ्टी खरीद लेता हूँ। और बीच भीड़ में खड़ा खाता हूँ। टकराते हुए लोगों से मन बहल जाता है।

अपने शहर की तरह यहाँ भी अपने मुहल्ले होंगे। वे सभी क्या इसी तरह से साफ्टी खाएँगे?

दुबेजी बोलते नहीं। हम पार्क के चारों तरफ घूमते हैं। रीगल में पोस्टर देखते हैं। आती-जाती लड़कियों के कसे लिहोर लेते उरोज, मुड़-मुड़ कर देखते हें। इतने में लगता है रात हो रही है। दुबेजी हाथ पैर दुखने का बहाना करते हैं, फिर व्हिस्की खरीदते हैं। पार्क के कोने में जाकर गटकते हैं और कहते हैं। चायघर में बैठेंगे।

चायघर में बैठते ही दो-तीन दुआ सलाम वाले मित्र करीब आ जाते हैं। दुबेजी जोर-जोर से बतलाते है कि वे 'फलां हाऊस' से पार्टी लेकर आ रहे हैं। स्कॉच और तंदूरी मुर्गा। फिर काफी ऊँची-ऊँची बातें। थकने पर उठते हैं। आवाजाही कम हो गई है। हम बस अड्डे की ओर जाते हैं। ये कोई चीज गुनगुना रहे हैं। यकायक मुझसे पूछते हैं–और शहर के क्या हालचाल है?

शहर माने...

शहर माने...

शहर माने....

कोई पाठ हो इसके पहले ही बोलता हूँ–आप ही सुनाइए!

दुबेजी एक किस्सा चुनते हैं। प्रेमिका के बारे में। हम रुक कर एक छोटी-सी होटल में भोजन करते हैं। दुबेजी का किस्सा जारी है। वे सुबकने लगते हैं और उन्हें बहुत सी बातें याद आती हैं। काश, मैं कोई सिलसिलेवार जिंदगी जीता। अब नहीं है कुछ नहीं है। मेरा कोई नहीं है। न आगे न पीछे। मैं किसी को भी मार डालूँगा। जेल चला जाऊँगा। मेहनत करने पर दो रोटी वहाँ भी मिल जाएगी।

कमीज से नाक पोंछकर वे उठते हैं। मैं सरदारजी को पैसा देता हूँ।

वे दुबेजी को विनोदी ढंग से देखकर हँसते हैं।

कमरे पर आते ही वे बिस्तर पर लेट जाते हैं। फिर नाक बजने लगती है। मैं होल्डाल पर पसर जाता हूँ। बिजली बंद कर देता हूँ।

दहशत

एक साफ सुथरा अंत

बस इतना ही होगा?

नींद आती नहीं...

मैंने चिट पहुंचा दी। केयरऑव श्रीमंता। चेंबर के अंदर गहमागहमी है। जो चिट ले गई थीं, उन्होंनें आकर कहा कि मीटिंग चल रही है। यहीं बैठिए। सोफे पर मैं बैठा रहा और डरता रहा। वे टाइपराइटर खटखटा रही थीं। मालूम नहीं क्यों सेक्रेटरी के नाम से हेलन की छवि याद आती है (स्त्री हेलन मुझे माफ करें)। मगर इस शालीन चेहरे को देखकर अच्छा लगता है। अपना डर, कनखियों से देखकर कम कर रहा हूँ।

अचानक दरवाजा भड़भड़ा कर खुलता है। एक सज्जन विलाप करते हुए दोनों कमरों के बीचोंबीच पसर गए हैं। वे अत्यंत करूणा के साथ रो रहे हैं। गले की टाई ढीली हो गई है। कुछ लोग अंदर है। कुछ लोग बाहर से जमा होते जा रहे हैं। मैं भी हड़बड़ाहट में खड़ा हो गया हूँ। सब जस के तस खड़े हैं। वे रो रहे हैं–मुझे मैनेजर साब ने मारा। और इसके बाद ही कहते हैं–मेरी नौकरी चली जाएगी। वे जोरों से रोते हैं। बार-बार यही शब्द। मैं समझ नहीं पाता वे सम्मान के लिए रो रहे हैं या नौकरी के लिए।

लुप्प् लुप्प्

लुप्प्

सब पत्थर की तरह जड़ हैं। अंत में मैनेजर कहते हैं–इसे पानी पिलाओ और आप लोग अपना-अपना काम करिए।

लंबी-चौड़ी मेज के पीछे मैनेजर ने हाथ हिलाकर आदेश दिया। कर्मचारीगण घिसटते हुए कुर्सियों की तरफ चले जाते हैं। दो व्यक्ति उन्हें उठाकर चल दिए हैं। वे लिफ्ट से नीचे उतर जाएँगे। दस मिनिट में सुनसान हो गया।

सायं सायं लुप्प् लुप्प्

जाइए–सेक्रेटरी ने कहा।

मैं चोर जेब से पत्र निकाल लेता हूँ। उन्होंने पत्र पढ़ा और स्नेह से मुझे देखा।

पूछा–घर में सब ठीक है उनके?

जी।

उनके रिश्ते में हो?

जी नहीं।

फिर?

घरेलू पहचान है।

ठीक है। उन्होंने एक फार्म निकाला और लिख दिया, जिसका मतलब यह कि ले लिया जाए।

मैं बाहर आकर फार्म भरने लगा। उन्होंने यह भी नहीं पूछा, मेरी योग्यता क्या है? मेरी रुचि किसमें है?

लिखते हुए ऐसा लगा मानों मुर्दा अंगों का प्रदर्शन कर रहा हूँ।

रुचि और विशेष योग्यता के खाने में एक लंबी लकीर खींच दी।

कंपनी की शर्तों के नीचे, जो मेरी ओर से छपी थी, उसके नीचे हस्ताक्षर घसीटे। लुप्प्–लुप्प्। फार्म जमा किया। कल से यहाँ आना है। बाहर आया तो देखा, वह अपना भारी चेहरा लिए, बाँहों में बैग दबाए प्रतीक्षा कर रहा है। टाई यथास्थान है। मैं उससे नजरें बचाता निकल गया। (हालाँकि मुझे जानता थोड़ी)।

कोई एक निर्धारित कुर्सी। फाइलें। पानी, चाय, लंच। घंटे, दिन, महीने।

लुप्प् लुप्प्

धड़ाम् ऊ ऊं हा हा

मारा मारा मारा

नौकरी नौकरी नौकरी प्रतीक्षा

लुप्प् लुप्प्

दुबेजी हँसते हैं। दुबेजी रायल आदमी हैं। दुबेजी कहते हैं, व्यावहारिक हैं। दुबेजी सुबह हँसते हैं, रात को रोते हैं। दुबेजी कहते हैं, अच्छा अब छोड़ो। चलो कनॉट तक हो आएँ। मैं मना करता हूँ। मुझे कनॉट से दहशत होती है। वे कंइयाँ में लेने लगते हैं। चलो चलो। यू आर अ यंग चैप। वे समझते हैं मैं थक गया हूँ।

हम वही सड़कें पार करते हैं। उसी घास को रौंदते हैं। उसी मार्के की शराब वे पीते हैं।

लौटते है तो कार्यक्रम बनता है एम.पी. कैंटीन में खाया जाए। बस बदल कर जाते हैं।

कैंटीन में साफ सुथरे कपड़े पहने विक्रम स्वागत करता है।

अबे तू यहाँ?

हौ।

कैसे?

वो साला समझता है कि चौबीसों घंटों के लिए खरीद लिया। अपने शौक के लिए कुछ करो तो चिढ़ जाता है।

दारू कब से पीने लगा।

दारू नहीं साब कपड़े, सिनेमा।

अच्छा अच्छा

साब मेहनत करेंगे तो अपने लिए ना।

अच्छा खाना लाओ।

दुबेजी बतला रहे हैं, जब नौजवान थे तब एक लड़के की कितनी पिटाई की थी। वैसे अब भी किसी को पछाड़ सकते हैं।

भोजन करते हुए मैंने कहा–मैं दिल्ली छोड़ना चाहता हूँ। हाँ मेरे मेरे कानों ने भी सुना।

घूर कर उन्होंने मुझे देखा, फिर कहा–तुम्हारी फैमिली 'बै' ग्राउंड है। कर सकते हो। अरे मेरे पास ज्यादाद होती न तो मैं जरूर आई.ए.एस. में आ जाता। वे रुआंसे हो गए। उन्होंने मुझसे कहा–तुम्हें दिल्ली से कतई नहीं डरना चाहिए। यहाँ तो बस छह महीने....

दिल्ली से मैं डरा नहीं हूँ। शहर किसी को डराता नहीं है। मैंने फिर कहा–मैं दिल्ली छोड़ दूँगा।

शायद, उन्होंने सुना नहीं।

वे ग्लास में ही हाथ धोकर कमीज से पोंछने में व्यस्त थे।

शशांक

जन्म : 18 अक्टूबर, 1953

प्रकाशन : उन्नीस साल का लड़का, कोसा फल, शामिल बाजा, पर्व तथा अन्य कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, जैसे हमलोग, स्ट्रीटप्ले हमारा (कहानी संग्रह), लीजिए (डायरी) शीघ्र प्रकाश्य

चिट्ठी

–अखिलेश

कुटिया पर मुझे साढ़े सात बजे तक पहुँच जाना था और सात बज गए थे। एक तो मेरी जेब में रिक्शे-भर के लिए मुद्रा नहीं थी, दूसरे आज इस जाड़े की पहली बारिश हुई थी और इस समय रात के सात बजे तेज हवा थी। जाड़े में ठंडी के अनुपात से हमारा शरीर सिकुड़ जाता है और चाल धीमी हो जाती है। तो धीमी गति से कुटिया पर साढ़े सात बजे कैसे पहुँचा जा सकता था।

मैंने मफलर से कानों के साथ-साथ समूचे सिर को ढक लिया। गर्दन पर लाकर दोनों किनारों को गाँठ लगाई। अब मैं अपनी समझ से सर्दी से महफूज कुटिया तक पहुँच सकता था। मफलर के भीतर से मेरी आँखें और नाक झलक रही होंगी।

कुटिया में आज हम दोस्तों का सामूहिक विदाई समारोह था। कहने को तो, हम बड़े दिन की छुट्टियों में घर जा रहे थे। पर इस बार का जाना साधारण प्रस्थान नहीं था। इस बार हमारे गमन में उत्साह नहीं मजबूरी थी। घरों से मनीआर्डर आने की अवधि बढ़ती जा रही थी और हम किसी भी कंप्टीशन में उत्तीर्ण नहीं हो रहे थे। हमने कुछ अखबारों में दफ्तरों और रेडियो स्टेशन में चक्कर मारे। पहली बात तो वहाँ काम का टोटा था। गर काम था, तो क्षणजीवी किस्म का। उसमें भी श्रम ज्यादा और धन कम का सिद्धांत सर्वमान्य था।

सबसे पहले रघुराज ने घोषणा की, 'मैं घर चला जाऊंगा। इलाहाबाद में मेरा पेट भी नहीं भर पाता है।'

कृष्णमणि त्रिपाठी ने गंभीरता का नाटक करते हुए कहा, 'सब्र करो और ईश्वर पर